International Journal of Sanskrit Research 2015; 1(5): 14-16

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2015; 1(5): 14-16
© 2015 IJSR
www.sanskritjournal.com
Received: 17-05-2015
Accepted: 21-06-2015

डॉ. डॉली जैन
512, रामानुजन आवास
वनस्थली विद्यापीठ
टोंक (राज.)

Correspondence
डॉ. डॉली जैन
512, रामानुजन आवास
वनस्थली विद्यापीठ
टोंक (राज.)

''पंचतन्त्र में सेवावृत्तिपरक चिन्तनः एक अध्ययन''

डॉली जैन

संस्कृत साहित्य की अजस्र धारा वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक न्यूनाधिक वेग से प्रवाहित हो रही है। संस्कृत साहित्य ने भारतीय साहित्य को प्राणवान बनाते हुए सदैव युगानुकूल प्रवृत्तियों को आत्मसात् किया है। साथ ही समाज के विभिन्न वर्गों की विविध संवेदनाओं का चित्रण इसमें बहुतायत से हुआ है।

पंचतन्त्र औपदेशिक जन्तु कथाओं की प्रधान कृति है। इसके रचयिता विष्णु शर्मा हैं। इसमें सरल भाषा में अनेक पशु कथाएँ वर्णित हैं, जिनमें जीवन की विविध समस्याओं का समाधान किया गया है। इन कथाओं के बीच–बीच में लेखक ने सेवक वर्ग या दूसरे शब्दों में दास–दासियों के विषय में अपने विचार व्यक्त किए हैं। इसमें सेवावृत्ति, सेवक के गुण व कर्त्तव्य, उसके प्रति समाज व राज्य के कर्त्तव्य, उसके कष्टमय जीवन जैसे सामाजिक विषय का निरुपण पर्याप्त रूप से किया गया है। पंचतन्त्र में उल्लिखित सेवावृत्ति सम्बन्धी विचारों को इस रूप में देखा जा सकता हैः–

1. सेवावृत्ति की परिभाषा

पंचतन्त्र में सेवावृत्ति राजधर्म से सम्बद्ध करके वर्णित की गई है। इसीलिए उसकी परिभाषा भी इसी प्रकार की है। राजा के हितों को सम्पादित करने वाली विशेषतः राजा की आज्ञा विधायिनी क्रिया ही सेवा कही जाती है। आज्ञाकारिता एवं प्रियकार्य का सम्पादन करके ही राज कार्य में उपस्थित होना चाहिए। विद्वानों को भी इसी मार्ग का अनुसरण करना चाहिए [1]।

2. सेवक के गुण व कर्त्तव्य

सेवक के गुणों व उसके कर्त्तव्य व अकर्त्तव्य का विवेचन पंचतन्त्र में पर्याप्त मात्रा में किया गया है। स्वामी के मनोनुकूल आचरण को सेवक का सर्वोत्तम गुण कहा गया है, क्योंकि राक्षस भी अनुकूल आचरण करने वाले व्यक्ति के वश में हो जाते हैं [2]।

इसके अतिरिक्त निःश🕐 मन से कार्य का भार समर्पित करने योग्य सेवक ही सच्चा सेवक व हितकारक कहा गया है [3]। कार्यकुशलता, कुलीनता, पराक्रम, सशक्तता, अनुरक्तता ये सेवक के गुण कहे गए हैं [4]। राजा के कठिन से कठिन कार्य करने के पश्चात् भी अपने को गुप्त रखना और उस कार्य की चर्चा भी न करना सेवक का एक अन्य गुण है [5]।

भृत्य के जिस कार्य के कारण स्वामी की मान हानि हो अथवा उसके चित्त में कष्ट पहुँचने की सम्भावना हो, ऐसे कार्य को कुल सेवक को नहीं करना चाहिए [6]। सेवक को राजा के शत्रुओं के प्रति शत्रु भाव और अभीष्ट जनों के प्रति मित्रता रखनी चाहिए [7]। सेवक के रहते हुए भी स्वामी यदि विपद्ग्रस्त हो जाए और सेवक उसकी रक्षा न करे तो वह सेवक नरकगामी कहा गया है [8]। सेवक के लिए स्वामिभक्ति की पराकाष्ठा इतनी अधिक कही गई है कि यदि सेवक स्वामी के लिए अपने प्राणों का परित्याग कर देता है तो वह जरा और मृत्यु से रहित होकर परम पद को प्राप्त करता है [9]।

3. स्वामी के गुण व कर्त्तव्य

पंचतन्त्र में केवल सेवक के गुण व कर्त्तव्यों का ही विवेचन नहीं किया गया है बल्कि उसके प्रति स्वामी के कर्त्तव्यों का भी निरूपण किया गया है। सेवक को भी सेव्य गुणों से युक्त नृपति का आश्रय लेना उचित कहा गया है क्योंकि कालान्तर में समृद्धिमान् होने के बाद वह सेवक को आजन्म सुख प्रदान कर सकता है [10]। कृपण एवं कटुभाषी राजा को असेव्य कहा गया है और ऐसे राजा की सेवा अस्वीकार्य कही गई है [11]। समृद्धिमान् राजा से अपेक्षा की गई है कि वह अपने आश्रित सेवक को परितृप्त करे अन्यथा ऐसा राजा त्याज्य कहा गया है [12]।

स्वामी से भृत्य के गुणों को जानने की अपेक्षा की गई है, अन्यथा उस स्वामी की सेवा में रहना उस भृत्य के लिए उचित नहीं है [13]। जो स्वामी सेवकों के गुणों को नहीं समझता है या समझ कर भी

अवहेलना पूर्वक उनको यथायोग्य मान तथा पद नहीं प्रदान करता है, वह यदि धनाढ्य और कुलीन भी हो तो भी भृत्य उसका अनुगमन नहीं करते और अवसर पड़ने पर छोड़ भी देते हैं। असमान गुण वाले व्यक्ति की तुलना में जो प्रभु गुणयुक्त सेवक का उचित सम्मान नहीं करता है या समान गुणयुक्त होने पर भी उसका सत्कार नहीं करता है अथवा योग्य होने पर भी उचित स्थान नहीं प्रदान करता है उस स्वामी को भृत्य छोड़ देते हैं। योग्य व्यक्ति की अयोग्य के साथ तुलना करने से या समान योग्य होने पर भी एक को हेय दृष्टि से देखने से अथवा योग्यता रहने पर भी उचित पद न मिलने से ही भृत्य स्वामी का परित्याग करते हैं [14]।

स्वामी को स्वामिभक्त, समर्थ एवं कुलीन सेवक का अपमान नहीं करना चाहिए। अपने विश्वस्त सेवक का उसी प्रकार लालन पालन करना चाहिए जैसे अपने पुत्र का किया जाता है [15]। अपने अनुचरों का सदा सम्मान करने वाले राजा को सेवक अर्थाभाव काल में भी नहीं छोड़ते हैं [16]।

राजा से अपने सेवकों के प्रति करूणा का व्यवहार रखने की अपेक्षा की गई है। करूणा व समभाव रखने वाला राजा ही तीनों लोकों की रक्षा कर सकता है [17]। सदाचारी और आज्ञाकारी भृत्यों को कष्ट से छटपटाते हुए देखकर जो राजा प्रसन्न होता है वह इस लोक में तो कष्ट भोगता ही है, मरने के पश्चात् भी नरक में वास करता है [18]।

4. राजा व सेवक का सम्बन्ध

पंचतन्त्र में राजा व सेवक के परस्पर सम्बन्ध के विषय में भी प्रकाश डाला गया है। राजा व सेवक को परस्पर एक दूसरे का पूरक कहा गया है। राजा के बिना सेवक और सेवक के बिना राजा का कार्य चलना कठिन होता है। अतः दोनों के मध्य का यह लौकिक व्यवहार उभय सापेक्ष कहा गया है [19]। जैसे तेजस्वी होने पर भी लोकोपकारी किरणों के बिना सूर्य सुशोभित नहीं होता है, उसी तरह प्रतापयुक्त होने पर भी लोकानुग्रहकारी गुणों से युक्त सेवकों के बिना राजा भी सुशोभित नहीं होता है [20]।

जैसे रथ के पहिए की नाभि में अरा सन्निविष्ट होता है और अरा के सहारे नाभि पहिए के मध्य में स्थित रहती है उसी प्रकार स्वामी के बल पर सेवकों की जीविका और सेवक के द्वारा राजा की सेवा आदि का कार्य चलता है, इस प्रकार दोनों का व्यवहार चक्र चलता रहता है [21]।

5. सेवक का कष्टमय जीवन

पंचतन्त्र में सेवावृत्ति को कष्टदायक माना गया है [22] और उसे शारीरिक स्वतन्त्रता की घातक माना गया है [23]। सेवक के जीवन को मृत के समान माना गया है क्योंकि वह न तो अपनी इच्छा से भोजन कर पाता है और न ही सो पाता है और न ही मनोगत बात कह पाता है [24]।

सेवक के कष्टकारक जीवन के कारण उसकी तुलना यति से की गई है। भूमि पर शयन करना, ब्रह्मचर्य का पालन करना, दुर्बल होना और अल्प आहार करना, ये सभी कार्य सेवकों और यतियों के समान होते हैं। दोनों में अन्तर केवल पाप और धर्म का ही होता है। सेवक जो कुछ करता है वह पाप के लिए करता है और यति धर्म के नियमों में आबद्ध होकर करता है [25]। इस प्रकार पंचतन्त्र में सेवावृत्ति का विशद विवेचन किया गया है। प्रस्तुत शोध पत्र का निष्कर्ष निम्न बिन्दुओं में देखा जा सकता है :–

1. आज मानवाधिकारों के अन्तर्गत मानव के मानव होने के नाते कुछ अधिकारों की चर्चा की जाती है, परन्तु पंचतन्त्र में सदियों पहले उल्लिखित ये विचार लेखक के सामाजिक सरोकार को व्यक्त करते हैं।
2. सेवक वर्ग या दास वर्ग के कष्टमय जीवन को लेखक ने बड़ी सहानुभूति के साथ प्रस्तुत किया है।
3. स्वामी से सुयोग्य सेवक को यथा योग्य सम्मान व धन प्रदान करने की अपेक्षा की गई है और इस रूप में उसकी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को अक्षुण्ण रखा गया है।
4. पंचतन्त्र में राजा व सेवक दोनों एक–दूसरे के प्रति उत्तरदायी हैं, दोनों एक–दूसरे के पूरक हैं, इस रूप में यहाँ शासन और शासित के बीच समानता की भावना ध्वनित होती है।

सन्दर्भ

1. यस्मिन्कृत्यं समावेश्य निर्विश①न चेतसा।
   आस्यते सेवकः स स्यात् कलत्रमिव चापरम्।।
   पंचतन्त्र–मित्रभेदः – 94
2. एवं ज्ञात्वा नरेन्द्रेण भृत्याः कार्या विचक्षणाः।
   कुलीनाः शौर्य सयुक्ताः शक्ता भक्ताः क्रमागताः।।
   पंचतन्त्र–मित्रभेदः – 92
3. यः कृत्वा सुकृतं राज्ञो दुष्करं हितमुत्तमम्।
   लज्जया वक्ति नो किि◌ञ्चत्तेन राजा सहायवान्।।
   पंचतन्त्र–मित्रभेदः – 93
4. येन स्याल्लघुता वाथ पीडा चित्ते प्रभोः क्वचित्।
   प्राणत्यागेऽपि तत्कर्म न कुर्यात् कुलसेवकः।।
   पंचतन्त्र–मित्रभेदः – 384
5. द्वेषिद्वेषपरो नित्यमिष्टानामिष्टकर्मकृत्।
   यो नरो नरनाथस्य स भवेद्राजवल्लभः।।
   पंचतन्त्र–मित्रभेदः – 60
6. आपदं प्राप्नुयात्स्वामी यस्य भृत्यस्य पश्यतः।
   प्राणेषु विद्यमानेषु स भृत्यो नरकं व्रजेत्।।
   पंचतन्त्र–मित्रभेदः – 315
7. स्वाम्यर्थे यस्त्यजेत् प्राणान् भृत्यो भक्तिसमन्वितः।
   परं स पदमाप्नोति जरामरण वर्जितम्।।
   पंचतन्त्र–मित्रभेदः – 316
8. द्रव्यप्रकृतिहीनोऽपि सेव्यः सेव्यगुणान्वितः।
   भक्त्याजीवनं तस्मात्फलं कालान्तरादपि।।
   पंचतन्त्र–मित्रभेदः – 49
9. सेवकः स्वामिनं द्वेष्टि कृपणं परूषाक्षरम्।
   आत्मानं कि स न द्वेष्टि सेव्याऽसेव्यं न वेत्ति यः।।
   पंचतन्त्र–मित्रभेदः – 51
10. यमाश्रित्यं न विश्रामं क्षुधार्ता यान्ति सेवकाः।
    सोऽर्कवन्नृपतिस्त्याज्यः सदापुष्पफलोऽपि सन्।।
    पंचतन्त्र–मित्रभेदः – 52
11. यो न वेत्ति गुणान् यस्य न तं सेवेत पण्डितः।
    नहि तस्मात्फलं किि◌ञ्चत्सुकृष्टादूषरादिव।।
    पंचतन्त्र–मित्रभेदः – 381
12. अनभिज्ञो गुणानां यो न भृत्यैरनुगम्यते।
    धनाढ्योऽपि कुलीनोऽपि क्रमायातोऽपि भूपतिः।।
13. असमैः समीयमानः समैश्च परिहीयमाणसत्कारः।
    धुरि चानियुज्यमानस्त्रिभिरर्थपतिं त्यजति भृत्यः।।
    पंचतन्त्र–मित्रभेदः – 79, 80
14. भक्तं शक्तं कुलीनं च न भृत्यमपमानयेत्।
    पुत्रवल्लालयेन्नित्यं य इच्छेच्छ्रियमात्मनः।।
    पंचतन्त्र–मित्रभेदः – 382
15. यः संमानं सदा धत्ते भृत्यानां क्षितिपोऽधिकम्।
    वित्ताभावेऽपि तं हृष्टास्तेर्त्यिजन्ति न कहिचित्।।
    पंचतन्त्र–मित्रभेदः – 24
16. कारूण्यं संविभागश्च तस्य भृत्येषु सर्वदा।
    संभवेत्स महीपालस्त्रैलोक्यस्यापि रक्षणे।।
    पंचतन्त्र–मित्रसम्प्राप्तिः – 27
17. सदाचारेषु भृत्येषु संसीदत्सु च यः प्रभुः।
18. न विना पार्थिवो भृत्यैर्न भृत्याः पार्थिवं विना।
    तेषां च व्यवहारोऽयं परस्परनिबन्धनम्।।
    पंचतन्त्र–मित्रभेदः – 87
19. भृत्यैर्विना स्वयं राजा लोकानुग्रहकारिभिः।
    मयूखैरिव दीप्तांशुस्तेजस्व्यपि न शोभते।।
    पंचतन्त्र–मित्रभेदः – 88

20. अरैः सन्धार्य ते नाभिर्नाभौ चाराः प्रतिष्ठिताः।
    स्वामिसेवकयोरेवं वृत्तिचक्रं प्रवर्तते।।
    पंचतन्त्र–मित्रभेदः – 89
21. तावज्जन्मापि दुःखाय ततो दुर्गतता सदा।
    तत्रापि सेवया वृत्तिरहो! दुःखपरम्परा।।
    पंचतन्त्र–मित्रभेदः – 288
22. सेवया धनमिच्छद्भिः सेवकैः पश्य यत्कृतम्।
    स्वातन्त्र्यं यच्छरीरस्य मूढैस्तदपि हारितम्।।
    पंचतन्त्र–मित्रभेदः – 287
23. नाश्नाति स्वेच्छयौत्सुक्याद्विनिद्रो न प्रबुध्यते।
    न निःशङ्कं वचो ब्रूते सेवकोऽप्यत्र जीवति।।
    पंचतन्त्र–मित्रभेदः – 290
24. भूशय्या ब्रह्मचर्यं च कृशत्वं लघुभोजनम्।
    सेवकस्य यतेर्यद्वद्विशेषः पापधर्मजः।।
    पंचतन्त्र–मित्रभेदः – 292